नियमसार, जीव अधिकार। १८ गाथा पूरी हुई। १९वीं गाथा।

**दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।**
**पज्जय-णएण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं।।१९।।**

**है उक्त पर्ययशून्य आत्मा, द्रव्य-दृष्टि से सदा।**
**है उक्त पर्यायों सहित, पर्याय-नय से वह कहा।।१९।।**

---

* जो भूत काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे (अथवा कहे); भविष्य काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे (अथवा कहे), अथवा किञ्चित् निष्पन्नतायुक्त और किञ्चित् अनिष्पन्नतायुक्त वर्तमान पर्याय को सर्वनिष्पन्नवत् संकल्पित करे (अथवा कहे), उस ज्ञान को (अथवा वचन को) नैगमनय कहते हैं।

*टीका :*—**यहाँ दोनों नयों का सफलपना कहा है।** अर्थात् कि आत्मा शुद्ध त्रिकाल द्रव्य होने पर भी, उसकी पर्याय / अवस्था में संसार और सिद्धदशा होती है। वस्तु है, वह तो त्रिकाल ध्रुव शुद्ध परमस्वभावरूप है, परन्तु उसके साथ में पर्याय नहीं है – ऐसा कहा था। परन्तु पर्याय, पर्याय में है। यहाँ तो यद्यपि व्यंजनपर्याय लेंगे। समझ में आया? वस्तु स्वयं शुद्ध चिदानन्द आनन्द, ज्ञायकभाव, वही वस्तु निश्चयनय का विषय है, परन्तु उसके साथ पर्याय नहीं है। उसमें नहीं, परन्तु पर्याय में पर्याय नहीं – ऐसा नहीं है। पर्याय है, व्यवहारनय का विषय है, परन्तु यहाँ तो टीकाकार व्यंजनपर्याय को पर्याय कहकर निषेध करेंगे।

देखो! **भगवान अर्हत् परमेश्वर ने...** सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग परमात्मा ने **दो नय कहे हैं, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनय।** देखो! यह तत्त्व इस प्रकार से है, उस प्रकार से न समझे तो उसे एकान्त अज्ञान होता है – ऐसा समझाते हैं। अकेला द्रव्य ही है और पर्याय नहीं, तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। पर्याय है और द्रव्य नहीं, वस्तु नहीं तो भी मिथ्यात्व एकान्त हो जाता है। समझ में आया? परमस्वभाव का वर्णन बहुत आया कि जिसमें सिद्ध और संसार दो दशा ही नहीं। यह बात निश्चय की द्रव्यार्थिक वस्तु दृष्टि से यथार्थ है, परन्तु उसमें पर्याय नहीं – ऐसा नहीं है। पर्याय-अवस्था है, हालत है। समझ में आया? उस अवस्था को न माने, वह तो एकान्त अज्ञान है।

संसार अवस्था है। चार गति की अवस्थायें व्यंजनपर्याय की दशा है। मोक्ष भी एक निर्मल दशा है – ऐसा अरिहन्त भगवान का उपदेश दो नय से है। निश्चय से और पर्याय से। यहाँ निश्चय को द्रव्यार्थिकनय कहा है। देखो, आता है। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक। अब द्रव्यार्थिक किसे कहना? कि **द्रव्य ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है,...** वस्तु, द्रव्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वरूप, वह जिस नय का प्रयोजन द्रव्य है, वस्तु है, उस नय को द्रव्यार्थिक कहा जाता है।

फिर से। नय अर्थात् ज्ञान का एक अंश है। ज्ञान का एक भाग। श्रुतज्ञान प्रमाण का एक भाग, श्रुतज्ञान प्रमाण, वह भी एक पर्याय है। अब श्रुतज्ञान प्रमाण के दो प्रकार : एक द्रव्यार्थिकनय और (दूसरा) पर्यायार्थिकनय। वस्तु इस प्रकार समझे बिना अनादि से गड़बड़ उठी है। बहुत से आत्मा ऐसा कहे कि शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... परन्तु शुद्ध क्या है?

उसकी पर्याय में क्या है ? उसके ज्ञान बिना शुद्धपना एकान्त से माने तो उसे पर्याय का ज्ञान नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? कहते हैं, जिसका प्रयोजन द्रव्य—अर्थ। जो ज्ञान का अंश है, उसका प्रयोजन द्रव्य है। वस्तु-वस्तु। उस नय को द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। यह सब समझने के लिये है।

**पर्याय ही जिसका अर्थ, अर्थात् प्रयोजन है,...** हालत। आत्मा की पर्याय, अवस्था, दशा। धर्म एक दशा है, मोक्षमार्ग भी एक दशा है; कोई त्रिकाली वस्तु नहीं है। त्रिकाली तो ध्रुव चिदानन्द शुद्ध है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि जिस ज्ञान का प्रयोजन वर्तमान अवस्था, हालत, दशा है; उसे यहाँ पर्यायार्थिकनय कहा जाता है। है न ? पर्यायार्थिक-अर्थ। पर्याय जिसका प्रयोजन है, उसे पर्यायनय कहा जाता है। **एक नय का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य नहीं है...** आहा..हा..! अकेला निश्चयनय का ही उपदेश और पर्याय नहीं, ऐसा उपदेश ग्रहणयोग्य नहीं है।

**मुमुक्षु :** ग्रहणयोग्य नहीं है, अर्थात् क्या ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जाननेयोग्य और आदरनेयोग्य नहीं है। वह उपदेश आदरनेयोग्य नहीं है। उस वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

**एक नय का अवलम्बन लेता हुआ...** निश्चय को ही अवलम्बन करे और पर्याय को ही अवलम्बन करे, दो में से एक को (अवलम्बन करे), वह वस्तु अज्ञान है, खोटी है। समझ में आया ? **एक नय का...** अर्थात् ज्ञान के एक अंश को, विषय करता **अवलम्बन लेता हुआ उपदेश,...** जाननेयोग्य नहीं, आदरनेयोग्य नहीं। **किन्तु उन दोनों नयों का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश, ग्रहण करनेयोग्य है।** ज्ञान तो दोनों नयों का करनेयोग्य है। सूक्ष्म तत्त्व है। वैसे तो सब शुद्ध.. शुद्ध तो बहुत से करते हैं (कि) अभेद है और शुद्ध है। परन्तु अभेद है, शुद्ध है-वह क्या ? और तेरी दशा में क्या ? यदि संसारी दशा भी शुद्ध होवे, तब तो उसे शुद्धता का आनन्द होना चाहिए। इसकी दशा में भूल है और भूल टलकर दशा निर्मल हो, वह भी एक दशा है, वह कहीं त्रिकाली चीज़ नहीं है। समझ में आया ? कहो, बसन्तीलालजी ! ऐसा है।

**दोनों नयों का अवलम्बन लेता हुआ...** त्रिकाली वस्तु समझावे, वह नय और वर्तमान अवस्था विकारी, अविकारी मुक्ति आदि, उस दशा को बतलावे, उस नय (दोनों

नय) का उपदेश जाननेयोग्य और आदरनेयोग्य है। समझ में आया? आत्मा अकेला कूटस्थ है, ध्रुव ही है, तब तो फिर कूटस्थ हो, उसे समझने का कुछ रहता नहीं और कुछ आनन्द प्रगट करना और आनन्द का अनुभव करना, यह तो रहता नहीं। पण्डितजी! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है, भाई!

**सत्ताग्राहक ( द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले ) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से,....** अब क्या कहते हैं? दोनों नयों का उपदेश ग्रहण करनेयोग्य-जाननेयोग्य बराबर है। अब जो आत्मा की त्रिकाल सत्ता एकरूप ध्रुवसत्ता है, उस **सत्ताग्राहक ( द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले ) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से,....** शुद्ध द्रव्यस्वभाव के ज्ञान के बल से **पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से, मुक्त तथा अमुक्त ( सिद्ध तथा संसारी ) समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा महासत्ता त्रिकाली ध्रुव, इस दृष्टि के बल से, वे संसारी जीव हों या मुक्त / सिद्ध हों, दोनों **व्यंजनपर्यायों से, मुक्त तथा अमुक्त ( सिद्ध तथा संसारी )....** इस व्यंजनपर्याय से सर्वथा व्यतिरिक्त ही है। वस्तु की दृष्टि से त्रिकाल वस्तु है, उसमें यह चार गति की आकृति व्यंजनपर्याय उसमें नहीं है।

**पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से, मुक्त...** अर्थात् सिद्ध और संसारी दोनों **समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।** देखो न! वस्तु जो सत्ता चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव, इस अपेक्षा से तो उसकी यह चार गति की आकृति की व्यंजनपर्याय उसमें है नहीं। सिद्ध को भी नहीं और संसारी को भी नहीं। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा। ऊपर-ऊपर से यह ले लिया कि यह आत्मा है, अमुक है... अमुक है। परन्तु वापस उसकी पर्यायें क्या? उसे पर्यायों से मुक्त क्यों कहा? पहले तो कहा कि दो नयों का उपदेश ग्रहण करना; और वापस यहाँ कहा कि यह तो द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य देखें तो व्यंजनपर्यायों का उसमें अभाव है; परन्तु पर्याय में पर्याय है। समझ में आया?

**समस्त जीवराशि...** समस्त जीवराशि में संसारी और मुक्त सब। व्यंजनपर्याय अर्थात् चार गति की आकृति वस्तु में है ही नहीं। वस्तु में, हों! सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिकनय में। **क्यों? 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** क्योंकि शास्त्र में कहा है कि शुद्धनय से सभी आत्मायें शुद्ध ही हैं। शुद्धदृष्टि से सब भगवान पूर्णानन्द प्रभु निर्मल शुद्ध ही हैं। उसमें

अशुद्ध है – ऐसा आता नहीं। शुद्धनय की सत्ताग्राहक दृष्टि में उसकी – वस्तु की वास्तविक शाश्वत् सत्ता है, उसे जाननेवाले की बल की दृष्टि से व्यंजनपर्याय से तो दोनों मुक्त ही हैं। क्योंकि '**सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया**' शुद्धनय से सब शुद्ध हैं – ऐसा शास्त्र में कहा है। समझ में आया ? गजब, भाई ! यह तो सब ! कितना जानना इसमें !

**मुमुक्षु :** धर्म करने में नय का क्या काम है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु धर्म नहीं इसकी दशा में, तब इसे धर्म करना है। यदि धर्म हो तो धर्म करना है, ऐसा कहाँ से आया ? तो धर्म नहीं है, तब क्या है ? अधर्म है।

**मुमुक्षु :** द्रव्य में पूरा-पूरा भरा है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वहाँ भले भरा हो, परन्तु यहाँ (पर्याय में) अधर्म है, उसका ज्ञान किये बिना धर्म की दृष्टि किस प्रकार होगी ? अधर्म दशा है।

**मुमुक्षु :** ऐसा बोझा लेकर किसलिए चले ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐई ! दशा में अन्दर अशुद्धता है। वस्तु शुद्ध है। यदि अशुद्धता न होवे तो धर्म करना, यह तो रहता नहीं। वह तो है, बस। हो गया, तब तो दशा ही शुद्ध है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

**ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से।** वापस स्पष्टीकरण करते हैं। **विभावव्यंजन-पर्यायार्थिकनय के बल से...** अब इस त्रिकाली द्रव्यार्थिक महासत्ता को देखे तो उसमें पर्याय है ही नहीं। सिद्ध को और संसारी को व्यंजनपर्याय है ही नहीं। यह तो सब आ गया। कहो, समझ में आया ? यह सब रात्रि को पूछे तो कठिन पड़े, ऐसा है। पोपटभाई ! जवाब देंगे। ठीक।

यहाँ तो कहते हैं, वस्तु की स्थिति वर्णन करते हैं। वस्तु ऐसी है कि द्रव्यार्थिक महासत्ता त्रिकाल से देखें तो, इस दृष्टि से तो उसमें व्यंजनपर्याय या पर्याय एक भी नहीं है, परन्तु व्यंजनविभाविक-विकारी पर्याय ऐसा लेना है न, यहाँ तो अभी। **विभावव्यंजन - पर्यायार्थिकनय के बल से वे सर्व जीव ( पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से ) संयुक्त हैं।** आहा..हा.. ! समझ में आया ? इसमें विशिष्टता (यह कही कि) सिद्ध भी विकारी पर्याय सहित हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई ! ध्यान रखनेयोग्य बात है। **विभावव्यंजनपर्यायार्थिकनय के**

**बल से...** पहले ऐसा लिया था कि सत्ताग्राहकनय के बल से। यहाँ विभावव्यंजनपर्याय के बल से, ऐसा लिया। अकेली पर्याय नहीं ली। सब अर्थपर्याय। विभावव्यंजन आकृति यह मनुष्यप्रमाण अन्दर जीव का आकार होता है। यह शरीर नहीं, जड़ नहीं। मनुष्य का आकार होता है, देव का, जो-जो अवतार। वह व्यंजनपर्याय विभाविक, उससे **नय के बल से वे सर्व जीव ( पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से ) संयुक्त हैं।** शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से संयुक्त नहीं; पर्यायार्थिकनय से सब जीव संयुक्त हैं। दो बातें हुई।

सिद्ध हो या संसारी हो; अन्दर ध्रुवस्वभाव महासत्ता की दृष्टि से देखें तो वे दोनों व्यंजनपर्याय से रहित हैं, परन्तु विभावव्यंजनपर्याय की वर्तमान की दृष्टि से देखें, विभावव्यंजनपर्याय के बल से देखें तो सब जीव विभावव्यंजनपर्यायसहित ही हैं। सिद्धसहित। अभी प्रश्न कहेंगे, सिद्ध को क्यों ? कि पूर्व में थी, उसकी अपेक्षा से। सिद्ध को पूर्व में थी न ? उस नैगमनय से वर्तमान में है - ऐसा कहा जाता है। गजब, भाई!

**मुमुक्षु :** वर्तमान में ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वर्तमान में कहेंगे। अभी कहेंगे। पूर्व नैगमनय की अपेक्षा से।

**मुमुक्षु :** वर्तमान में ऐसे कहेंगे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नैगमनय की अपेक्षा से वर्तमान में है।

**मुमुक्षु :** वर्तमान में नहीं...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं तो नहीं, यह तो बराबर है, परन्तु नैगमनय से सर्व जीव कहे न ? **वे सर्व जीव संयुक्त हैं।** उसमें कोई जीव बाकी नहीं रखे। परमात्मा सिद्ध अशरीरी हो गये, वे भी अभी विभावव्यंजनपर्यायसहित हैं। किस प्रकार से ? वह कहेंगे।

**विशेष इतना कि सिद्ध -जीवों के अर्थपर्यायोंसहित परिणति है,...** देखो! वह निकाल डाली। व्यंजन भिन्न विकारी को निकाल डाली। मात्र गुण की परिणति ही अर्थ है। आनन्द, ज्ञान, शान्ति ऐसे स्वभाव की दशा सिद्धभगवान को-परमात्मा को है। **परन्तु व्यंजनपर्यायोंसहित परिणति नहीं है।** सिद्ध को विभावव्यंजनपर्याय नहीं है। ध्यान रखना। इसमें से प्रश्न उठेगा। **क्यों ? सिद्धजीव, सदा निरंजन होने से।** सिद्ध परमात्मा अशरीरी हुए, वे तो निरंजन शुद्ध हो गये। उन्हें अब अशुद्धता या व्यंजनपर्याय होती नहीं।

**( प्रश्नः ) यदि सिद्धजीव सदा निरंजन हैं...** सदा निरंजन है – ऐसा तुम कहते हो, **तो सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं—ऐसा सूत्रार्थ व्यर्थ सिद्ध होता है।** क्या कहते हैं ? जब तुम ऐसा कहते हो कि सिद्धभगवान सदा निरंजन है, वे अशरीरी हो गये हैं। संसार का नाश करके, विकार का नाश करके पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, वे सिद्ध भगवान सदा निरंजन हैं – ऐसा कहते हो; तथा एक ओर तुमने कहा कि सभी जीव दो नय सहित हैं। देखो! अर्थात् **सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं...** ऐसा आपने कहा था।

**मुमुक्षु :** सर्व जीव कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्व जीव – ऐसा लिखा है।

**सर्व जीव, द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक, दोनों नयों से संयुक्त हैं ( अर्थात्, सर्व जीवों को दोनों नय लागू होते हैं ) — ऐसा सूत्रार्थ ( गाथा का अर्थ ) व्यर्थ सिद्ध होता है।** क्या कहते हैं ? जब सिद्ध भगवान परमात्मा जो देहरहित हो गये, उन्हें जब तुम सदा निरंजन कहोगे, तो फिर एक ओर कहते हो कि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों से सर्व जीव सहित हैं; तो उसमें व्यंजनपर्यायसहित हैं, ऐसा तो वापस उस नय में आ गया, और तुम सिद्ध को सदा निरंजन कहते हो, तो दोनों में पर्यायार्थिकनय का उपदेश व्यर्थ जाता है।

यह ऊपर-ऊपर से यह सब सामायिक और प्रौषध करते हों, उन्हें समझना कठिन पड़ता है। क्या है यह ज्ञान ? यह किस प्रकार का ज्ञान ? ऐई भीखाभाई! यह वस्तु... प्रकाशदासजी! देखो! यह समझने की चीज़ है। ऐसे ऊपर-ऊपर से पकड़ ले (उससे इनकार करते हैं)। पर्याय नहीं होती, ऐसा कहा था अभी सबेरे। पर्याय पर की है। पर्याय पर की नहीं, जीव की है।

**मुमुक्षु :** पर्याय पर नहीं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह किस अपेक्षा से ?

**मुमुक्षु :** द्रव्य से पर नहीं तो दोनों एक हो जायें।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** द्रव्य से पर है परन्तु पर्याय से अपने में अपने से है। पर के कारण

पर्याय है, ऐसा नहीं है। पर के कारण पर्याय हो, तब तो द्रव्य में पर्याय रही ही नहीं। हो गया। पर्यायार्थिकनय से भी द्रव्य, मुक्ति और संसारदशा से रहित हो गया (किन्तु) ऐसा नहीं है। यह बड़ी गड़बड़ अभी मूल में है। परन्तु मूल प्रयोजन पकड़ते नहीं; इसलिए समझे बिना सब तुम्बी में कंकड़ लगते हैं।

**मुमुक्षु :** तुम्बी में कभी कंकड़ होते ही नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कंकड़ नहीं परन्तु वे सूखे बीज होते हैं न? सूख जाते हैं, इसलिए खड़कते हैं (बजते हैं)।

यहाँ क्या कहते हैं? देखो! शान्ति से, धीरे से समझो। एक ओर ऐसा कहा कि आत्मा में दो नय का उपदेश भगवान का है, वह बराबर इसे ग्रहण करना चाहिए। बराबर है? एक नय का उपदेश है कि वह अवलम्बन करनेयोग्य नहीं है। एक बात। अब दो नय में त्रिकाल सत्ताग्राहक वस्तु है, उस दृष्टि से देखें तो उसमें पर्याय है ही नहीं। अब पर्यायार्थिक विभावव्यंजनपर्याय की दृष्टि से देखें। विभावव्यंजन आकृति संसार के आकार-विकार, उनसे देखें तो सब जीव विभावव्यंजनपर्यायसहित है। तीसरा, सिद्ध सदा निरंजन हैं ऐसा जबकि आप कहते हो तो सब जीव पर्यायार्थिकनय से भी विभावव्यंजनपर्यायवाले हैं, वह बात व्यर्थ जाती है। कहो, समझ में आया? यह सब व्यापारी को पकड़ने जैसा है, वजुभाई!

**मुमुक्षु :** दो नय के ज्ञान की आवश्यकता क्या है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नय अर्थात्? ज्ञान का विषय करनेवाला। जो वस्तु है, उसका विषय करनेवाला वह नय। वस्तु कैसी है, उसे जाने बिना नय जानेगा किस प्रकार से? वस्तु को उसके दो पहलू हैं, उन्हें- दो पहलुओं को जाननेवाला जो नय अर्थात् ज्ञान, उस ज्ञान का विषय वह द्रव्य और पर्याय है। इसलिए नय जानना चाहिए। अभी तक शुद्ध, बुद्ध बहुत आता था, इसलिए यह और जरा पूरी उलझन खड़ी होगी परन्तु ज्ञान का ही ठिकाना न हो, वहाँ उसमें... बात की वह समझ में आयी?

एक ओर आप ऐसा कहते हो कि दो नय का उपदेश ग्रहण करना और दूसरे प्रकार से ऐसा कहते हो कि पर्यायार्थिकनय से विभाव-विकार की आकृति की पर्याय से सब जीवसहित हैं। एक ओर कहते हो कि सिद्ध भगवान सदा निरंजन हैं, तो पर्यायार्थिकनय

से विकारी व्यंजनपर्यायसहित है, यह बात शास्त्र का उपदेश व्यर्थ जाता है। आहा..हा..! जेठाभाई! इसकी रमत (क्रीड़ा) द्रव्य और पर्याय दो में है। बाहर में कुछ नहीं है। बाहर-बाहर सब दूर का है। आहा..हा..!

**( उत्तरः — व्यर्थ सिद्ध नहीं होता,... )** जो पर्याय अर्थात् अवस्थादृष्टि से विकारी आकृति की पर्यायें सभी जीव कहे थे, वह बात मिथ्या सिद्ध नहीं होती और सदा सिद्ध निरंजन कहे और पर्यायार्थिकनय से सब विभाव-विकारवाले कहे, उस बात में विरोध नहीं आता। क्यों? क्यों नहीं आता? **निगम, अर्थात् विकल्प उसमें हो, वह नैगम।** नीचे स्पष्टीकरण है, देखो नीचे नोट। ***जो भूत काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे...*** विगत काल की दशा हो गयी हो, वह वर्तमान है—ऐसा कहे, वह एक नैगमनय ज्ञान के अंश का भाग है।

***भविष्य काल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे...*** यह भी एक नैगमनय। ज्ञान के अंश का पूर्व का वर्तमान और भविष्य का वर्तमान बतलाना, वह भी एक नय का विषय है। ***अथवा किञ्चित् निष्पन्नतायुक्त और किञ्चित् अनिष्पन्नतायुक्त वर्तमान पर्याय को सर्वनिष्पन्नवत् संकल्पित करे, उस ज्ञान को ( अथवा वचन को ) नैगमनय कहते हैं।*** विस्तार है, बापू! यह नैगमनय अर्थात् भूतकाल की दशा वर्तमान कहना, भविष्य की दशा अभी कहना, उसका नाम नैगमनय का विषय है। वह भी एक ज्ञान करनेयोग्य है। समझ में आया?

**वह नैगमनय तीन प्रकार का है, भूतनैगम, वर्तमाननैगम और भावीनैगम। यहाँ भूतनैगमनय की अपेक्षा से, भगवन्त सिद्धों को भी...** लो, सिद्ध भगवान अशरीरी आत्मा हुए परन्तु पूर्व में तो संसारी थे न? या सिद्ध ही थे? अनादि सिद्ध हैं, इस अपेक्षा से यहाँ बात नहीं है। यह अशरीरी आत्मा वस्तु स्वरूप ऐसा है, वैसा दशा में जिन्हें प्रगट हो गया, उस दशा में पहले संसारी जीव थे, वे संसारी थे, वे भी एकेन्द्रिय (आदि) चार गति में थे। विकारी अंशरूप थे। आहा..हा..! समझ में आया?

**यहाँ भूतनैगमनय की...** विगत काल के अंश की **अपेक्षा से, भगवन्त सिद्धों को भी व्यंजनपर्यायवानपना और अशुद्धपना सम्भवित होता है...** यह विगत काल की अपेक्षा से उन्हें व्यंजनपर्याय और अशुद्धपना वर्तमान है, ऐसा सम्भव है। विगत काल की

अपेक्षा से। आहा..हा..! उनकी पर्याय में अशुद्धता थी न? विकार, दशा में था न? नहीं था तो विकार टालकर निर्विकार हुआ किस प्रकार? अत्यन्तिक दुःख से मुक्त होओ, ऐसा कहा न? तो दुःख था न? मुक्ति अर्थात् आत्यन्तिक दुःख से सर्वथा छूट जाना, परन्तु तब पहले दुःख था न? उस दुःख से मुक्त हुए, तब दुःख नहीं है परन्तु दुःख तो पहली दशा में था। उस पहली दशा का आरोप करके वर्तमान में है—ऐसा कहना, वह नैगमनय का विषय है। आहा..हा..! व्यापारी लोगों को जरा... ऐ... शिवलालभाई! ऊपर-ऊपर का निश्चय का था, वह ठीक लगे। उस द्रव्यस्वभाव में संसार नहीं, भेद नहीं, अकेली पर्याय भी नहीं।

**मुमुक्षु :** वह तो असत् है, उसका हमारे क्या काम है, वह असत् है, ऐसा तो लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु किसमें असत्? द्रव्य में असत् है। उसकी अवस्था में सत् है।

**मुमुक्षु :** उसकी हमारे क्या चिन्ता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चिन्ता किस अपेक्षा से चिन्ता नहीं? हमारे स्वभाव में वह विभाव नहीं है। विभाव, विभाव में हो, परन्तु हमने जहाँ दृष्टि लगायी है, उसमें वह नहीं है; इसलिए हमें टालना या रखना या है, उसका हमारे क्या काम है? ऐसा कहते हैं परन्तु पर्याय में है, (ऐसा) रखकर (बात है)। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** सुमेल करना कठिन पड़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वीतराग... कहा न पहले अरिहन्त भगवान का दो नयों का उपदेश है।

**मुमुक्षु :** पहले से ही ऐसा आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले से ही शुरु किया है। वस्तु की पर्याय अंश है या नहीं? दशा है या नहीं? दशा न हो तो कार्य तो सब दशा में हैं। संसारदशा, मोक्षमार्गदशा, मोक्षदशा, वह सब दशा है। वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव चिदानन्दमूर्ति ध्रुव है। धर्म वह दशा है। धर्म, वह कहीं गुण और त्रिकाली वस्तु नहीं है। अज्ञान और विकार, वह भी एक दशा है। समझ में आया? यह सब व्यापारी को यह सब कहना। ऐई... मलूपचन्दभाई! वे उल्टे-सीधे गोले मारे हों

न, और स्थूल-स्थूल सामने मान लिया गया हो, उसे (ऐसा लगे) और यह क्या! मूल समझ का ठिकाना नहीं है, कहते हैं।

पर्याय आत्मा में सिद्ध को भी पूर्व में थी, वह गिनकर वर्तमान है, ऐसा नैगमनय से कहने में आता है। उन सिद्धभगवान को भी भूतकाल की अपेक्षा से, राजा था, परन्तु फिर राज से उठ गया अभी। एक दृष्टान्त। समझ में आया? तो भी पूर्व की अपेक्षा से उसे (ऐसा कहा जाता है कि) राजा है, भाई! राजा। कहा जाता है या नहीं?

**मुमुक्षु :** राजा आवे इसलिए....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा ही कहे न! वहाँ मूड़बिद्री में... नहीं? वहाँ उतरे थे। दिगम्बर राजा था। राजा था। उसका मकान अभी देखो तो सब ऊँचे स्तम्भ और सब। अब तो बेचारा गरीब हो गया, परन्तु राजा। उसे राज की ओर से कुछ मिलता है। वर्षासन मिलता है परन्तु सेठ अभी... परन्तु राजा थे वे लोग। नाम भूल गये। जगदीश उसका नाम था। दिगम्बर है, राजा था। अभी राजा कहलाता है। मकान देखो तो बड़े ऊँचे स्तम्भ। समझे न? अब तो गरीब हो गये हैं। नया करने का वह कुछ नहीं है। परन्तु उसे राज्य की ओर से आजीविका के लिये कुछ हजारों रुपये मिलते हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि ये राजा थे। राजा थे नहीं, परन्तु राजा हैं—ऐसा भी कहा जाता है। यह राजा मनुष्य है, वह तो अलग बात, हों! वे तो और भोले को राजा कहलाये। मूर्ख अर्थात् राजा व्यक्ति है, ऐसा नहीं कहते? अर्थात् मूर्ख न कहकर मीठा शब्द प्रयोग किया है। राजा व्यक्ति है, भाई! अर्थात् क्या? मूर्ख है ऐसा। यह तो गत काल के राजा थे, उन्हें वर्तमान में राजा रूप से बतलाना, ऐसा भी एक नय का विषय कहने में आता है और यह कुँवर हो तो ऐसा कहे, जो राजा का हो तो कहे, यह तो राजा है। भविष्य में राजा होनेवाला। तीर्थंकर भविष्य में होनेवाले हैं, उन्हें वर्तमान में तीर्थंकर कहते हैं।

**मुमुक्षु :** तीर्थंकर के गर्भकल्याणक।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीर्थंकर के गर्भकल्याणक। तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं। वे कहाँ तीर्थंकर थे? तीर्थंकर तो केवली हों, तब होते हैं। बोले तो ऐसे ही बोला जाये न। भगवान जन्में, तीर्थंकर जन्मे, ऐसा कहते हैं, लो! परन्तु तीर्थंकर तो तेरहवें गुणस्थान में होंगे परन्तु यह बात वर्तमान में कहना, ऐसा एक नैगमनय का विषय है। ज्ञान को भूत-भविष्य को लम्बाकर वर्तमान में कहना, ऐसा भी एक विषय है।

**भगवन्त सिद्धों को भी व्यंजन...** अर्थात् आकृति-विभावव्यंजनपर्याय भी है और अशुद्धपना भी है, लो! **क्योंकि पूर्व काल में वे भगवन्त, संसारी थे...** पहले वे चार गति में भटकते थे। आहा..हा..! अनादि संसार में तीर्थंकर भी पर्याय में भूतकाल में यह चार गति अनन्त बार की। वह विकारी पर्याय है। उसके अस्तित्व में है। पर्याय के अस्तित्व में है, उसे वर्तमान में कहना, वह नैगमनय का विषय है। **पूर्व काल में वे भगवन्त, संसारी थे—ऐसा व्यवहार है।** ऐसा व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। पूर्व में संसारी थे, ऐसा उन्हें अभी कहना, ऐसा एक व्यवहार है।

**बहु कथन से क्या ? सर्व जीव, दो नयों के बल से शुद्ध तथा अशुद्ध हैं—ऐसा अर्थ है।** लो, सब जीव त्रिकाली की अपेक्षा से शुद्ध हैं, वर्तमान त्रिकाल शुद्ध हैं और पर्याय से शुद्ध हुए या अशुद्ध रहे हुए दोनों को, सर्व जीवों को वर्तमान में अशुद्ध कहने में आवे, वह भी एक नय का विषय है। समझ में आया? जिसने पर्याय नहीं मानी, उसे यह बात किसी भी प्रकार से नहीं जँचेगी। वह पर्याय है, उस अवस्था को मनवाने, वस्तु की स्थिति मनवाने की यह शैली खड़ी की है। समझ में आया? पर्याय नहीं थी, पर्याय है ही नहीं... पर्याय है ही नहीं (परन्तु) किसमें नहीं? द्रव्य में नहीं - त्रिकाली वस्तु में नहीं। वर्तमान दशा में नहीं तो कार्य तो पर्याय में होता है।

**मुमुक्षु :** पर्याय तो कार्य किया ही करती है, अपने क्या काम है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भी कब? द्रव्यस्वभाव का अनुभव हुआ तब। अकेली पर्याय.. पर्याय.. किया करे। किसके बिना? किसमें होगी? पर्याय, पर्याय का काम करे। परन्तु किसमें? कौन? वस्तु जो ज्ञायकभाव ध्रुव चिदानन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव दृष्टि में आया। बस, पर्याय, पर्याय का काम करेगी ही अब। द्रव्य, वह पर्याय का काम नहीं करता। अन्तिम गाथा का यह अटपटा विषय है। जीवद्रव्य का अधिकार है न? तो द्रव्य का पूरा रूप तो द्रव्य और पर्याय दो होकर होता है। पण्डितजी! जीव अधिकार है न? जीव का अधिकार—द्रव्य अर्थात् त्रिकाल सत्ता ग्राहक वस्तु से भी है और वर्तमान अवस्था से भी है। वह वर्तमान अवस्था व्यंजनपर्यायवाली (अवस्था) संसार में थी, उसका नाश होकर सिद्ध को निर्मल (पर्याय) हुई, तथापि भूतकाल की अपेक्षा से भी उन्हें अशुद्धता है, व्यंजनपर्याय है। सब जीवों को है तो वे भी इकट्ठे आ गये। समझ में आया? आरोपित से।

**मुमुक्षु :** वास्तविक नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वास्तविक वर्तमान नैगम से कहने में आता है। भूत की अपेक्षा से है। भूत की अपेक्षा से (कहे) परन्तु वर्तमान में है, ऐसा कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** वर्तमान में ऐसा आरोप हो सकता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आरोप हो सकता है। यह जीव के अधिकार की अन्तिम गाथा पूर्णता की पर्याय के साथ बतलाने के लिये दो नय का (विषय लिया है)। आहा..हा..! इसमें तो बहुत प्रकार आये हैं, हों!

पहले ऐसा कहा कि भगवान अरिहन्त परमेश्वर ने ज्ञान के दो अंश कहे हैं। क्योंकि उनका विषय दो है इसलिए। वस्तु त्रिकाली और वर्तमान दशा। दो अंश / विषय है। विषय है तो उस विषय को जाननेवाले दो नय कहे हैं। विषय है, वह भिन्न चीज़ है। जाननेवाला ज्ञान, वह भिन्न है। एक नय से त्रिकाल है, वह नय का विषय है। एक नय से उसमें वर्तमान अवस्था है। चाहे तो संसारी हो, व्यंजनवाली हो, विकारसहित और सिद्ध भी है। ऐसा दो नय का (विषय है), क्योंकि द्रव्य में दो प्रकार है। द्रव्य और पर्याय, उसके अस्तित्व में दो है; इसलिए भगवान ने दो नय का उपदेश कहा है, वह जाननेयोग्य है।

पहले ऐसा आया था कि द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसे द्रव्यार्थिक कहते हैं। पर्याय जिसकी जरूरत / प्रयोजन है, उसे पर्यायार्थिक कहते हैं। सत्ताग्राहकनय से वस्तु सत्... सत्... सत्... ध्रुव है, उस ग्राहकनय से उसमें पर्याय-फर्याय है ही नहीं। सत्ता-त्रिकाली सत्ता की ग्राहकदृष्टि से, उसके बल से, उसके जोर से उसमें पर्याय नहीं है और पर्यायार्थिकनय के बल से सभी जीवों को पर्याय है, ऐसा सिद्ध किया है।

तब और फिर से लिया कि ये सिद्ध तो सदा निरंजन है, (ऐसा) आप कहते हो न? उन्हें तो अशुद्धता नहीं है। निरंजन शुद्धपरमात्मा हो गये न! सुन न! वह किस अपेक्षा से कहा है। उन्हें भी भूतकाल में वह अवस्था अशुद्ध थी। चार गति की आकृति थी, उसे मिटाकर हुए हैं। वह गयी है, उसे वर्तमान में बतलाना—ऐसा एक नैगमनय का विषय है। समझ में आया?

चावल लेने जाते हों, तो कहे क्या लेने जाते हो? भात। भात तो अभी हुए भी नहीं परन्तु उन्हें बतलाने के लिये (ऐसा कहते हैं)। भात करना है न? (तो कहे) भात लेने जाते

हैं। घर में पका, थोड़ा कच्चा है। भात हो गया। बैठ जाओ खाने। थोड़ा कच्चा है तो भी उसे पूर्ण नहीं, तथापि पूर्ण है ऐसा कहने का नय का एक अधिकार है। बैठ जाओ, पूरा हो गया, लो। ऐसा कहते हैं या नहीं? सब्जी थोड़ी कच्ची और थोड़ी पक गयी हो तो कहते हैं बैठ जाओ। दो मिनिट में पक जायेगी। अनिष्पन्न है, उसे निष्पन्न कहना। नहीं प्राप्ति, उसकी वर्तमान प्राप्ति कहना, ऐसा भी एक (नय है)। क्योंकि ऐसा एक भाग है। भविष्य की पर्याय के साथ वर्तमान को सन्धि करो तो ऐसा भाग उसे लागू पड़ता है। समझ में आया?

तब कहे, तुमने ऐसा कहा और! सर्व जीव व्यंजनपर्यायवाले सभी जीव हैं। एक ओर कहा सिद्ध निरंजन हैं, तो सब जीव विकार, व्यंजन-आकृतिवाले हैं, यह शास्त्र का उपदेश व्यर्थ जाता है। (समाधान यह है कि) व्यर्थ नहीं जाता। पूर्व की अपेक्षा लेकर वर्तमान में कहना, इस अपेक्षा से व्यर्थ नहीं जाता। कहो, समझ में आया? कितना याद रहेगा इसमें? पोपटभाई ने तो कहा है कि कहूँगा ऐसा कहा। उस टाईल्स में क्यों सब याद रहता है? आठ हाथ डालना, अमुक डालना, अमुक डालना। जिसमें जिसका रस, उसमें ही उसका रंग जमा हुआ होता है। बातें करने बैठे तो मानो... आहा..हा..!

यहाँ आत्मा की बात है। आत्मा और प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। एक द्रव्य पहलू, एक पर्याय पहलू। यह दो पहलू हैं न? शरीर के दो पहलू हैं या नहीं ये? दायाँ और बायाँ। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, छह द्रव्य (में) कायम रहनेवाला एक अंश। नय है न, इसलिए नय तो अंश को ही विषय करता है। पूर्ण को विषय करे तो प्रमाणज्ञान हो गया। समझ में आया? परमाणु द्रव्य है। उस परमाणु की व्याख्या अब अजीव में लेंगे। इसके बाद। इसमें नहीं परन्तु इसका ज्ञान करके छोड़नेयोग्य है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि सर्व जीव अपने भूतकाल में, वर्तमान में भले पवित्र सिद्ध परमात्मा हो गये, भूतकाल में दोषवाले, आकृतिवाले थे। इस अपेक्षा से उन्हें लागू पड़ता है। वर्तमान कहना ऐसा, वह विरोध को प्राप्त नहीं होता।

**इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में चौथे श्लोक द्वारा) कहा है कि—**समयसार में अपने आ गया है।

**उभय-नय-विरोधऽध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,**
**जिन-वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्त-मोहाः ।**
**सपदि समयसारं ते परं ज्योति-रुच्चै-**
**रनव-मनय-पक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव ।।**

यह चौथा श्लोक अपने आ गया है। **दोनों नयों के विरोध को नष्ट करनेवाले,...** निश्चय से जो कहा, उसे उस प्रकार से। पर्याय को व्यवहार से कहा, उसे उस प्रकार से। दोनों का विरोध होने पर भी **स्यात्पद से अंकित जिनवचन में जो पुरुष रमते हैं,...** अपेक्षा से वह कहा था। वस्तु के स्वरूप में-त्रिकाली ध्रुव में यह पर्याय नहीं है। पर्याय, पर्याय में है, उसके अस्तित्व में है। ऐसा दो का ज्ञान करके, वीतराग ने कहा हुआ जो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, उसमें जो पुरुष रमते हैं। वचन में रमते हैं अर्थात् वचन में कहा हुआ भाव। क्योंकि वस्तु जो त्रिकाल है, वह तो ध्रुव है। अब उसमें रमना, वह तो पर्याय है, नयी दशा है। समझ में आया? तो पर्याय, पर्यायरूप से जानकर; द्रव्य, द्रव्यरूप से जानकर और द्रव्यस्वभाव मुख्यरूप से भगवान की वाणी में आदरनेयोग्य कहा है। समझ में आया?

वस्तु... द्रव्य और पर्याय दो का वर्णन अवश्य किया है। दो का यथावत् ज्ञान करके, प्रयोजनभूत जो वस्तु त्रिकाली है, उसका आश्रय लेना, अर्थात् उसमें रमना, यह वीतराग के कहे हुए दो नयों का सार है। वर्तमान अवस्था को अवस्थारूप से मेलवाली-अशुद्धतावाली जैसी हो, वैसी जाने और त्रिकाल शुद्ध एकरूप है, उसे जाने। जानकर वर्तमान पर्याय से दृष्टि उठा (लेना)। जानने के लिये बराबर है, आदरने के लिये बराबर नहीं। उसमें से (दृष्टि) उठाकर वस्तु जो त्रिकाल वीतराग ने कही वह। वीतराग ने तो ध्रुवस्वभाव को आदरनेयोग्य कहा है। वीतराग की वाणी में तो वीतरागभाव प्रगट करने का (कथन) आता है। वीतरागभाव प्रगट करने का आवे, वहाँ पर्याय की उपेक्षा करने में आवे और द्रव्य की अपेक्षा करने में आवे, वह वीतराग की वाणी कहने में आती है। आहा..हा..! समझ में आया?

इस संसार में, देखो न, पढ़ते हैं। कितने लड़को को परीक्षा चलती है। परीक्षा आयेगी, इसलिए रात और दिन पढ़े-वाँचे। पाप की परीक्षा है और पाप की पढ़ाई है, तो भी उसमें कितनी लगन है। उसी प्रकार यह आत्मा क्या है? वस्तु क्या है? पर्याय क्या है? उसे जानने के लिये कितना ही समय देना पड़ेगा या नहीं?

दोनों नयों का जैसा है, वैसा बराबर ज्ञान करके; अपना प्रयोजन वीतरागमार्ग में ध्रुव का आश्रय करना, पर की उपेक्षा करनी, ऐसा जो साररूप भगवान ने कहा, उसमें जो आत्मा के स्वभाव में रमता है, अखण्ड आनन्द प्रभु में रमता है, आ गया। ध्रुव त्रिकाली है, उसमें रमता है, यह पर्याय हो गयी।

**वे स्वयमेव मोह को वमन करके,...** अर्थात् क्या कहते हैं ? अखण्ड ध्रुव आनन्द की मूर्ति प्रभु, जो एकसमय की पर्याय से अलग तत्त्व है। जाननेयोग्य पर्याय है – ऐसा तो कहा; परन्तु उस पर्याय से भिन्न द्रव्यार्थिकनय का विषय जो पूरा तत्त्व है, उसमें जो पुरुष रमते हैं, उनका मोह-मिथ्यात्व स्वयं वमन हो जाता है, उन्हें मिथ्यात्व नहीं रहता। स्वभाव सन्मुख होने पर मिथ्यात्व का नाश हुए बिना नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। पर्याय में मिथ्यात्व था तो सही। आहा..हा..! वमन कर देता है, इसमें आ गया। द्रव्य शुद्ध है – ऐसा आश्रय कराया, परन्तु पर्याय में अशुद्धता है, उसका ज्ञान कराया था।

इसलिए कहते हैं कि जो यहाँ भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य है, उसका आश्रय लेकर, अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान में रमता है, उसका मिथ्यात्व का भाव **स्वयमेव...** अर्थात् ? नाश करूँ तो नाश हो – ऐसा वहाँ है नहीं। मिथ्यात्व का नाश करूँ तो नाश हो, ऐसा वहाँ है नहीं। वह तो जहाँ आत्मा के स्वभाव सन्मुख ढला, तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं होती, उसने मिथ्यात्व को वमन कर दिया है। आहा..हा..! भाषा की विशिष्टता यह है। वमन कर दिया है। जैसे कुत्ता वमन किया हुआ खाता है; मनुष्य वमन किया हुआ नहीं खाता। इसी प्रकार जिसने भगवान आत्मा के स्वरूप का; पर्याय का ज्ञान करने पर भी; आश्रय ध्रुव का लिया है, उसका मिथ्यात्व वमन हो जाता है, नष्ट हो जाता है। फिर से मिथ्यात्व नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

**वे स्वयमेव...** देखो ! स्वयमेव, इसमें भी बहुत विवाद उठे न। कर्ता-कर्म आता है न ? पाँच गाथा। स्वयं, स्वयं। उसका विवाद। अरे ! भगवान ! कब तुझे विवाद निकालना। खोटा लेख है, उसमें ऐसा है। स्वयमेव अर्थात् वह परमाणु, परमाणुरूप से परिणमा, ऐसा स्वयमेव लेना। स्वयं से ही परिणमता है और पर से नहीं, निमित्त से नहीं, यह बात नहीं लेना। स्वयं परिणमता है। स्वयं परिणमने का अर्थ कि पुद्गल, पुद्गलरूप होता है; जीव, जीवरूप होता है। अपनेरूप ऐसा। अपना (स्वयं का) कहा न ? पुद्गल। परन्तु उसका

यहाँ क्या काम है ? क्रमबद्ध में ऐसा डालते हैं न वे ! ऐसा कहते हैं कि यह क्रमनियमित है न ? तो बराबर है। जीव, वह जीवरूप से दूसरी पर्याय होती है; दूसरी पर्याय जड़रूप नहीं होती, ऐसा वहाँ कहा है। लो, ठीक। अरे ! यह विवाद तो विवाद। अरे ! भगवान ! ऐसा अवसर, भाई ! अवसर में काम नहीं करेगा तो फिर नहीं हो सकेगा।

दोनों नयों का परस्पर विरोध है, तथापि कथंचित् द्रव्यदृष्टि से ध्रुव है; कथंचित् पर्यायदृष्टि से अशुद्ध है अथवा पर्यायदृष्टि से पर्याय है —ऐसे विरोध मिटाकर, जो पुरुष वीतरागभाव में वस्तु स्वयं ध्रुव चैतन्य, अन्तर आनन्द का धाम भगवान, वहाँ झुक गया है, वहाँ झुक गया है, उसमें रमता है, उसका मिथ्यात्व सहज नष्ट हो जाता है।

**अनूतन ( अनादि ) और कुनय के पक्ष से खण्डित न होनेवाली,...** लो ! अनवम, अनय, अनवम और अनय। अनादि जो कुनय का पक्ष है, उससे खण्डित नहीं होता। वह तो अपने स्वरूप को पाकर आनन्द की दशा का अनुभव करेगा। अनुभव कहीं द्रव्य का और ध्रुव का नहीं है। अनुभव उसका, परन्तु जो पर्याय का पर्याय लक्ष्य से अनुभव था, वह द्रव्य लक्ष्य से पर्याय का अनुभव हुआ; इसलिए ध्रुव का अनुभव साथ में कहा जाता है। समझ में आया ? और कहे कि द्रव्य का अनुभव नहीं होता, पर्याय का अनुभव होता है। किस अपेक्षा से ? अनुभव तो पर्याय का है, परन्तु जो पर्याय / अवस्था है, अवस्थादृष्टि में रहकर जो अनुभव था, वह मिथ्यात्व अनुभव था और इस त्रिकाली ध्रुव में नजर करके अनुभव हो, वह ध्रुव में से आता होने से ध्रुव का अनुभव है - ऐसा कहने में आता है। ध्रुव का और पर्याय का दोनों का अनुभव है - ऐसा कहा जाता है, परन्तु कहने का अर्थ इतना कि ध्रुव के आश्रय से प्रगट होती दशा का अनुभव है। ध्रुव कूटस्थ वस्तु है, उसका अनुभव नहीं हो सकता। खण्डित नहीं होती। किसी कुनय से न्याय खण्डित नहीं होता - ऐसी चीज़ है, कहते हैं। समझ में आया ?

**ऐसी उत्तम परमज्योति को-समयसार को शीघ्र देखते ही हैं।** अन्दर। भाषा देखो ! **शीघ्र देखते ही हैं।** जो कोई पर्याय को पर्यायरूप से जानने पर भी, उसका आश्रय छोड़कर त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय करता है, वह अल्प काल में समयसार को शीघ्र, अल्पकाल में परमात्म पद को प्राप्त करता है। आहा..हा.. !

अब पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं। ३६वाँ।

## श्लोक-३६

और ( इस जीव अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं — )

( मालिनी )

अथ नय-युग-युक्तिं लङ्घयन्तो न सन्तः,
परमजिनपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।
सपदि समय-सारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति,
क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम् ।।३६।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ जीवाधिकारः प्रथमश्रुतस्कन्धः।

---

(वीरछन्द)

उभय नयों के सम्बन्धों का उल्लंघन नहिं करें सुजान।
परमेश्वर के पद पंकज में मत्त हुए जो भ्रमर समान॥
ऐसे महापुरुष ही सत्वर समयसार को पाते हैं।
पृथ्वी पर परमत कथनों से सत्पुरुषों को क्या फल है॥३६॥

*श्लोकार्थ :*—जो दो नयों के सम्बन्ध का उल्लंघन न करते हुए, परमजिन के पाद-पंकजयुगल में मत्त हुए भ्रमरसमान हैं — ऐसे जो सत्पुरुष, वे शीघ्र समयसार को अवश्य प्राप्त करते हैं। पृथ्वी पर परमत के कथन से सज्जनों को क्या फल है ( अर्थात्, जगत में जैनेतर दर्शनों के मिथ्या कथनों से सज्जनों को क्या लाभ है )?॥३६॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्यसमान हैं और पाँच इन्द्रियों के फैलावरहित देहमात्र जिनको परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में ( अर्थात्, श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य-देवप्रणीत श्री नियमसारपरमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित, तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में ) जीव-अधिकार नाम का प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-३६ पर प्रवचन

**अथ नय-युग-युक्तिं लङ्घयन्तो न सन्तः,**
**परमजिनपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।**
**सपदि समय-सारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति,**
**क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम्।।३६।।**

आहा..हा..! जो कोई पुरुष, **जो दो नयों के सम्बन्ध का उल्लंघन न करते हुए,...** द्रव्य है, उस द्रव्य को द्रव्यरूप से जाने और पर्याय को पर्यायरूप से मुझमे हैं - ऐसा जाने। यह पर्याय है और पर की है - ऐसा नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? **परमजिन के पाद-पंकजयुगल में मत्त हुए....** परम वीतराग के चरणकमल के युगल में **मत्त हुए भ्रमरसमान हैं—ऐसे जो सत्पुरुष, वे शीघ्र समयसार को अवश्य प्राप्त करते हैं।** लो! वह अल्पकाल में आत्मा.. उसके दो नय कहे न? दोनों को नहीं उल्लंघता हुआ। पर्याय, पर्यायरूप से है, ऐसा बराबर निर्णय करे। मुझमें पर्याय है। पर की नहीं और पर के कारण नहीं तथा द्रव्य, द्रव्यरूप से पर्यायरहित त्रिकाल है। समझ में आया?...

**पृथ्वी पर परमत के कथन से सज्जनों को क्या फल है...** सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिकाल ज्ञान से देखा, वैसा कहा, वैसा है। अब दूसरे अभिप्रायों से जगत के प्राणी को क्या काम है? परमेश्वर ने जो यह मार्ग कहा, वह सत् परम पवित्र, परम सत्य की धारा से प्रचलित (है), उसे दूसरे मतों से क्या काम है? लो, ऐसा कहकर यहाँ जीव, वीतराग ने कहा वैसा जीव, ऐसा। जीव अधिकार है न?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कहा हुआ, अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य। पर्याय, पर्यायरूप से अनादि-अनन्त पर्याय है। पर्याय भी, कभी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना की पर्याय नहीं होती। यह तो पर की अपेक्षा से भिन्न करने पर (ऐसा कहा जाता है)। समझ में आया? ऐसा जो वीतरागमार्ग का उपदेश, उसे भलीभाँति समझकर, अन्य अभिप्राय से तुझे क्या काम है? (कि) अमुक ऐसा कहते हैं... अमुक ऐसा कहते हैं। यह मार्ग ही ऐसा है। ऐसा समझकर अन्तर में आश्रय करना, वह अल्प काल में समयसार को प्राप्त करता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)